आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
गांधीनगर, पिन–382009

Copy-2
Deleted
6/06/2001

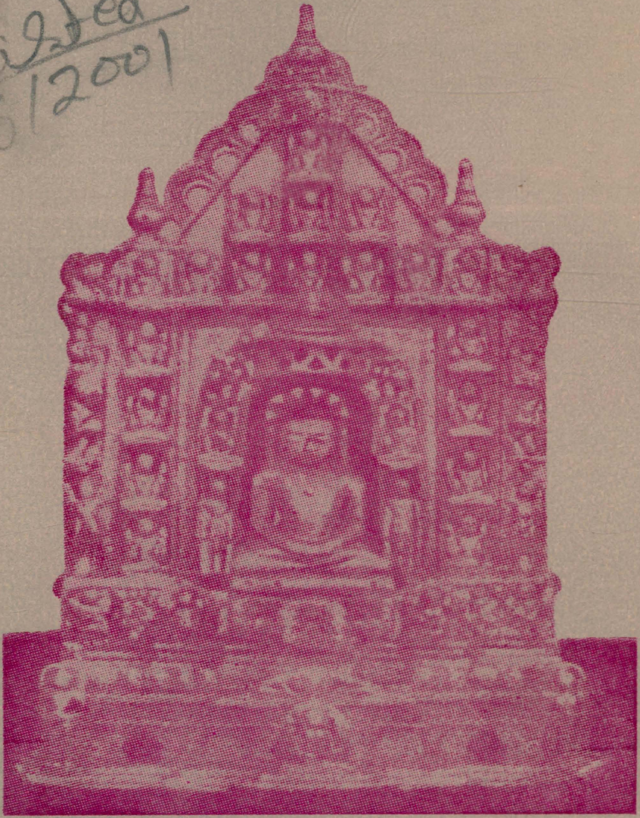

तित्थयर

वर्ष २० : अंक ७ नवम्बर १९९६

जैन भवन

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष २० : अंक ७
नवम्बर १९९६

□

संपादन
राजकुमारी बेगानी
लता बोथरा

□

आजीवन : एक हजार रुपये
वार्षिक शुल्क : पचपन रुपये
प्रस्तुत अंक : पांच रुपये

□

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५, कलाकार स्ट्रीट,
कलकत्ता-७००००७

□

मुद्रक
अनुप्रिया प्रिन्टर्स
६ ए, बड़ौदा ठाकुर लेन
कलकत्ता-७

सूची

प्रवचन	१९७
चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास	२०५
प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य	२१२
प्राकृत जैन कथा साहित्य	२२२
संकलन	२२५

जिसने दुःख को समाप्त कर दिया है उसे मोह नहीं है, जिसने मोह को मिटा दिया है उसे तृष्णा नहीं है। जिसने तृष्णा का नाश कर दिया है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है, वह अकिंचन है।

श्री

NAHAR

Interior Decorator

5/1, Acharya Jagadish Chandra Bose Road

CALCUTTA-700 020

Phone : 247-6874 Resi. : 244-3810

प्रवचन

—सति सम्यग्दर्शने न्याय्यमणुव्रतादीनांग्रहणं नान्यथा ॥
—जिनवचनश्रवणादेः कर्मक्षयोपशमावितः सम्यग्दर्शनम् ॥
—प्रशमसंवेगनिर्वेदानुकम्पास्तिक्याभिव्यक्तिलक्षणं तत् ॥

परमकृपानिधि महान् श्रुतधर आचार्यश्री हरिभद्रसूरीश्वरजी स्वरचित "धर्मबिन्दु" ग्रन्थ के तीसरे अध्याय में गृहस्थजीवन का विशेष धर्म बता रहे हैं। वह विशेष धर्म है बारह व्रतमय श्रावकधर्म। यह श्रावकधर्म तभी फलदायी बनता है, जब ग्रहण करनेवाले में सम्यग्दर्शन का गुण प्रकट हुआ हो। इसलिए धर्म प्रदान करने वाले सद्गुरु सम्यग्दृष्टि जीव को ही विशेष धर्म प्रदान करते हैं।

सम्यग्दर्शन यानी श्रद्धा और व्रत यानी विरति। श्रद्धा के बिना विरति नहीं हो सकती है। कितनी वास्तविक बात कही है ग्रंथकार ने। बीज के बिना वृक्ष नहीं वैसे श्रद्धा के बिना विरति नहीं। हां, बिना बीज के वृक्ष होते हैं...... परन्तु कागज के...प्लास्टिक के। वे वास्तविक वृक्ष नहीं होते हैं, वृक्ष का आभास होता है। उन वृक्षों पर फल भी लटकते हैं परन्तु वह भी आभास ही होता है। फल खाने के नहीं होते, मात्र देखने के होते हैं। वैसे बिना श्रद्धा के कोई व्रतधारी बन भी जाय, उसके व्रत मात्र आभास होते हैं! उसके व्रत कागज के या प्लास्टिक के वृक्ष समान होते हैं। निष्फल होते हैं। बिना श्रद्धा के, व्रतों का कोई मूल्य नहीं बताया है सर्वज्ञ वीतराग भगवन्तों ने।

इस प्रतिपादन का यह अर्थ होता है कि पहले श्रद्धावान होना चाहिए। सम्यग्दर्शन गुण प्रकट होना चाहिये।

टीकाकार आचार्यश्री ने मिथ्यात्वी जीव को उषर भूमि' के समान बताया है। जिस भूमि में धान्य पैदा नहीं होता है। उसको उषर भूमि कहते हैं। ऐसी भूमि में यदि किसान बीज बोता भी है, वे बीज अंकुरित नहीं होते हैं, नष्ट हो जाते हैं। वैसे, जिस जीवात्मा में सम्यग्दर्शन-गुण पैदा नहीं हुआ हो, जो मिथ्यात्वी है, उसको व्रत दिये भी जायें तो वे व्रत नष्ट हो जाते हैं। व्रतों का भाव विकसित नहीं होता है।

इसलिए, व्रतधारी होने से पूर्व श्रद्धावान् होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। 'व्रत लेने के लिये तत्पर बना हुआ मनुष्य श्रद्धावान् समकितदृष्टि है या नहीं—' यह बात व्रत लेने वाले गुरुजनों को सोचने की है।

बिना सम्यग्दर्शन अणुव्रत भी नहीं :

प्रश्न—जो जो जीव समकित दृष्टि नहीं हों, उनको अणुव्रत भी नहीं देने चाहिए क्या ?

महाराजश्री : अणुव्रत हो, गुणव्रत हो या शिक्षाव्रत हो, ये व्रत विशेषधर्म है जिस जीव में सम्यग्दर्शन न हो उसको ये व्रत नहीं देने चाहिए। पहले उस मनुष्य को श्रद्धावान् यानी समकित दृष्टि बनाना चाहिए।

एक बात समझना कि मनुष्य की मान्यता को बदलना सरल काम नहीं है। कुछ समय के लिए व्रत देना सरल काम है! मनुष्य को समकितदृष्टि बनाने का काम मान्यता बदलने का काम है! मिथ्या मान्यता को मिटाकर सम्यग् मान्यता को आरोपित करने की होती है! यह काम बड़ा दुष्कर काम है। नास्तिक को आस्तिक बनाने का काम इतना दुष्कर होता है, जितना मूर्ख को बुद्धिमान् बनाना मुश्किल नहीं होता! रोगी को निरोगी बनाना मुश्किल नहीं होता।

जो मनुष्य समकितदृष्टि हो, उसी को अणुव्रत देने चाहिये। मिथ्यादृष्टि मनुष्य को अणुव्रत नहीं देने चाहिये। जो देते हैं वे लेनेवालों का हित नहीं करते हैं, अहित करते हैं। लेनेवाला नहीं जानता है कि मैं मिथ्यादृष्टि हूँ इसलिए मुझे व्रत नहीं लेने चाहिए।" व्रत देनेवाले गुरुजनों को सोचने का यह विषय है।

आप लोग गम्भीरता से सोचेंगे तो यह बात आप को तर्कपूर्ण लगेगी। कुछ उदाहरण से यह बात स्पष्ट करता हूं।

पहला उदाहरण है किसान का। खेत में बीज बोने से पूर्व वह जमीन को सुयोग्य बनाता है। कांटे दूर करता है, जमीन को मृदु बनाता है, खाद डाल कर उपजाऊ बनाता है। बाद में बीज बोता है। अनुकूल हवा और पानी से बीज को अंकुरित करता है।

दूसरा उदाहरण है डाक्टर का। आपरेशन करने से पूर्व वह रोगी को देखता है। शरीरशक्ति, जीवनशक्ति देखता है। शरीर में सड़ा हुआ अंश निकालना है, नया अंश प्रत्यारोपित करना है... तो शरीर की योग्यता देखनी पड़ती है। योग्यता देखे बिना आपरेशन करने जाय तो मरीज 'टेबल' पर ही शायद मर जाय।

तीसरा उदाहरण है मकान का। नया मकान बनाना है तो जमीन की योग्यता देखी जाती है। उस जमीन में हड्डियां नहीं होनी चाहिये, उस मिट्टी की गन्ध अच्छी होनी चाहिए, वह जमीन मुर्दे जलाने की या गाड़ने की जगह नहीं होनी चाहिए.. वगैरह देखा जाता है। सुयोग्य जगह पर मकान बनाने से, उस मकान में रहने वाले सुखशान्ति पाते हैं।

ठीक इसी तरह आत्मा की योग्यता देखी जानी चाहिए व्रत देते समय। उसमें मिथ्यात्व नहीं होना चाहिए। यदि उसमें मिथ्यात्व हो तो उपदेश देकर उसका मिथ्यात्व दूर करना चाहिए। मिथ्यात्व दूर होने पर और सम्यग्दर्शन प्रगट होने पर ही उसको व्रत देने चाहिए।

प्रश्न—मिथ्यादृष्टि को व्रत लेने की इच्छा होती है क्या ?

महाराजश्री : हाँ, होती है ! जिस प्रकार भूख नहीं होने पर भी भूख का अनुभव होता है न ? उसी प्रकार मिथ्यादृष्टि को व्रत-महाव्रत लेने की इच्छा होती है ! व्रत के सही भाव नहीं होते हैं उनके। विरति-धर्म को वह समझ ही नहीं सकता है। इसलिए वह व्रत लेता भी है, व्रत के भावों से वंचित रहता है। भाववृद्धि से भी वह वंचित रहता है। इस दृष्टि से वह व्रत ग्रहण करने के लिए अयोग्य माना गया है। मिथ्यादृष्टि के प्रति द्वेष की भावना से यह नहीं कहा गया है। उसको समकितदृष्टि बनाकर व्रत देने की जिनाज्ञा बतायी गई है।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति दो प्रकार से :

सम्यग्दर्शन गुण की प्राप्ति कैसे होती है, यह बात समझाने से पूर्व 'मिथ्यात्व' को समझ लें। जैसे आत्मा अनादि है, वैसे मिथ्यात्व भी अनादि है। आत्मा के साथ अनादि से 'मिथ्यात्व मोहनीय' नाम का कर्म रहा हुआ है। परन्तु ऐसा नियम नहीं है कि जो 'अनादि' होता है वह 'अनन्त' होता है। जो अनादि होता है वह 'सांत और अनन्त दो प्रकार का होता है। मिथ्यात्व-मोहनीय कर्म कुछ (थोड़े) जीवों के साथ अनन्तकाल जुड़ा रहेगा और कुछ (ज्यादा) जीवों के साथ उसका सम्बन्ध कट जायेगा, यानी इस मिथ्यात्वमोहनीय कर्म से आत्मा मुक्त हो जायेगी। जो आत्मायें कभी न कभी शुद्ध-बुद्ध होनेवाली हैं। वे 'भवी' कहलाती हैं और ये आत्मायें मिथ्यात्वमोहनीय कर्म से मुक्त होती हैं। जो आत्मायें कभी भी शुद्ध-बुद्ध-मुक्त होने वाली नहीं हैं वे 'अभवी' कहलाती हैं और ये आत्मायें मिथ्यात्वमोहनीय कर्म से कभी भी मुक्त नहीं होती हैं। यानी ऐसी अभवी आत्माओं को कभी भी 'सम्यग्दर्शन' गुण प्राप्त नहीं होता है। वे अनादि-अनंतकाल मिथ्यादृष्टि ही बनी रहती है। जो जीव भवी होते हैं वे या तो जिनवचन सुनने से समकित दृष्टि बनते हैं अथवा 'निसर्ग' से बनते हैं।

'तथाभव्यत्व' के परिपाक से जीव को वीर्यशक्ति उल्लसित होती है और उस वीर्यशक्ति से स्वतः मिथ्यात्वमोहनीय कर्म टूट जाता है। सम्यग्दर्शन प्रगट हो जाता है।

प्रश्न—'तथाभव्यत्व' क्या होता है ?

महाराजश्री : जैसे ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि आत्मा के गुण होते हैं वैसे तथाभव्यत्व भी आत्मा का गुण है, अक्षय गुण है। जब यह गुण परिपक्व होता है यानी आत्मा की मुक्ति निकट होती है, तब आत्मा का वीर्यगुण उल्लसित होता है और सम्यग्दर्शन-गुण प्रकट हो जाता है। इसको 'निसर्ग समकित' सम्यग्दर्शन कहते हैं। उपदेश आदि निमित्तों से जो सम्यग्दर्शन पैदा होता है उसको 'अधिगम समकित' कहते हैं।

सम्यग्दर्शन का स्वरूप बताते हुए टीकाकार आचार्यदेव ने सात बातें बतायी हैं :

१. तत्त्वश्रद्धानलक्षणं (जिसका लक्षण तत्त्वश्रद्धा है)
२. विपर्ययव्यावृत्तिकारी (जो विपर्यास को दूर करनेवाला है)
३. असदभिनिवेशशुन्यं (जो असत् आग्रहों से रहित है)
४. शुद्धवस्तुप्रज्ञापनानुगतं (जो हर वस्तु का शुद्ध स्वरूप बताता है)
५. निवृत्ततीव्रसंक्लेशं (जो चित्त का तीव्र संताप दूर करता है)
६. उत्कृष्टबन्धाभावकृत् (कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति नहीं बांधने देता है)
७. शुभात्मपरिणामरूपं (जो शुभ आत्मपरिणाम-रूप हैं)
सम्यग्दर्शनम्।

१. सम्यग्दर्शन का लक्षण तत्व श्रद्धा

यदि मनुष्य तीन तत्त्वों के प्रति श्रद्धावान् है तो मानना चाहिये कि उस आत्मा में सम्यग्दर्शन-गुण प्रकट हुआ है। ये तीन तत्त्व हैं—परमात्मा, सद्गुरु और सद्धर्म।

जिन्होंने राग-द्वेष का समूल उच्छेद कर दिया है, जो वीतराग बने हैं और जो सर्वज्ञ हैं, उनको ही परमात्मा मानता हो, ऐसे वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा के बताये हुए मोक्षमार्ग पर जो चलते हों और विशुद्ध मोक्षमार्ग का उपदेश देते हों—ऐसे साधुपुरुषों को ही जो सद्गुरु मानता हो, और वीतराग-सर्वज्ञ द्वारा बताये हुए अहिंसामूलक धर्म को ही जो सद्धर्म मानता हो, तो समझना चाहिए कि उसमें सम्यग्दर्शन-गुण प्रकट हुआ है। वह जीवात्मा समकित दृष्टि है।

ऐसी श्रद्धावान् आत्मा को जब जिनोक्त नौ तत्त्वों की समझदारी और श्रद्धा होती है तब उनका सम्यग्दर्शन-गुण सुदृढ़ होता है और समुज्ज्वल बनता है। ये नौ तत्व हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बंध, निर्जरा और मोक्ष। ज्यों-ज्यों आप लोग इन नौ तत्त्वों का विस्तार से और गहराई में जाकर अध्ययन करते जाओगे, आपको सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा के प्रति प्रीतिभाव बढ़ता जायेगा। जिनशासन के प्रति श्रद्धा अविचल बनती जायेगी। नौ तत्त्वों की श्रद्धा, आप के सम्यग्दर्शन का लक्षण है।

एक बात याद रखना, नौ तत्त्वों का मात्र ज्ञान होना, सम्यग्दर्शन के लिए पर्याप्त नहीं है, ज्ञान के साथ श्रद्धा चाहिये। श्रद्धा के साथ का ज्ञान ज्ञान है, अन्यथा अज्ञान है।

२. सम्यग्दर्शन से विपर्यास दूर होता है

जब नौ तत्त्वों पर ज्ञानमूलक श्रद्धा होती है, तब तत्त्वविषयक कोई विपर्यास नहीं रहता है। विपर्यास यानी विरुद्ध ज्ञान। भ्रमात्मक ज्ञान। अंधेरे में रज्जु को देखकर सर्प का ज्ञान होता है न? नौ तत्त्व का यथार्थ बोध सारे विपर्यासों को मिटा देता है। वीपरीत ज्ञान दूर हो जाता है।

जैसे परमात्मा को निग्रह-अनुग्रह करनेवाला मानता था। जब परमात्मा को सर्वज्ञ-वीतराग स्वरूप समझ लिये, निग्रह-अनुग्रहरूप विपर्यास-ज्ञान दूर हो गया।

पहले हिंसा और आरम्भ-समारम्भ से प्रचुर धर्म को धर्म मानता था। सम्यग्दर्शन का प्रकाश प्राप्त होने पर धर्म की पूर्व भ्रमणा टूट जाती है। अहिंसा मूलक सर्वज्ञभाषित धर्म को ही धर्म मानता है।

पहले आत्मा को या तो नित्य मानता था अथवा अनित्य मानता था। सम्यग्दर्शन के प्रकाश में उसका विपर्यास दूर हो जाता है, वह आत्मा को 'नित्यानित्य' मानता है। द्रव्य से नित्य और पर्याय से अनित्य मानता है।

पहले पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु और आकाशरूप पंचभूत में ही आत्मा की मान्यता थी, सम्यग्दर्शन का प्रकाश प्राप्त होने पर पंचभूत से भिन्न आत्मा को मानता है। विपर्यास दूर हो जाता।

इस प्रकार सभी तत्त्वों के विषय में समकितदृष्टि जीव का ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। भ्रमणायें दूर हो जाती हैं।

३. असत् आग्रहों से सम्यग्दर्शन मुक्त होता है

समकितदृष्टि जीव जैसे भ्रमणाओं से मुक्त होता है वैसे गलत आग्रह से भी मुक्त होता है। जो मनुष्य एकान्तवादी होता है वो ही गलत आग्रहवाला होता है। अनेकान्तवाद को समझनेवाला और माननेवाला मनुष्य असत् आग्रह कभी नहीं करेगा। समकितदृष्टि मनुष्य अनेकान्तवाद को मानता है, अपेक्षा-वाद को मानता है, इसलिये गलत आग्रह कभी नहीं करेगा। हां, सही आग्रह वह अवश्य करेगा।

जैसे, यह चंपकलाल पिता ही है अथवा मामा ही है," ऐसा गलत आग्रह कभी नहीं करते हो न? परन्तु कोई कहे कि 'यह चंपकलाल उसके बेटे का पिता नहीं है… उसके भतीजे का पिता है…' तो आप स्पष्ट मना कर दोगे! आप आग्रह से कहोगे कि 'यह चंपकलाल अपने पुत्र की अपेक्षा पिता है और भतीजे की अपेक्षा चाचा है।'

संसार व्यवहार में जिस प्रकार आप गलत बात का आग्रह रखना पसन्द नहीं करते वैसे समकितदृष्टि मनुष्य तत्त्वविषयक गलत आग्रह से मुक्त हो जाता है। "आत्मा नित्य ही है," ऐसा आग्रह नहीं होता है वैसे "आत्मा अनित्य ही है," ऐसा गलत आग्रह भी उसको नहीं होता है परन्तु आत्मा नित्यानित्य ही है ऐसा सही आग्रह उसको अवश्य होता है! वैसे, आत्मा द्रव्यदृष्टि से नित्य है और पर्यायदृष्टि से अनित्य है" ऐसा सही आग्रह होता है, परन्तु कोई कहे कि "आत्मा पर्यायदृष्टि से नित्य है और द्रव्यदृष्टि से अनित्य है,' तो वह नहीं मानेगा। स्पष्टता से इन्कार कर देगा।

सम्यग्दर्शन समुचित अपेक्षाओं से समन्वय स्थापित करता है। परन्तु कोई अनुचित अपेक्षाओं से असमन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करता है तो स्पष्ट निषेध कर देता है। असत् आग्रह नहीं करेगा, परन्तु सत् आग्रह अवश्य करेगा। वह यथार्थवादी होगा।

आत्मा…परमात्मा…परलोक आदि अगम-अगोचर तत्त्वों के विषय में मिथ्यादर्शन के अन्धकार में जो आग्रह होते हैं वे सारे आग्रह, सम्यग् दर्शन का प्रकाश प्राप्त होने पर छूट जाते हैं।

४. सम्यग्दर्शन वस्तु का शुद्ध स्वरूप बताता है

हर वस्तु के दो स्वरूप होते हैं—शुद्ध और अशुद्ध। मिथ्यादृष्टि जीव अशुद्ध स्वरूप देखता है यानी मानता है। समकितदृष्टि शुद्ध स्वरूप देखता है यानी मानता है। अर्थात् जो वस्तु, जो पदार्थ जैसा होता है, वैसा ही समकित दृष्टि शुद्ध स्वरूप देखता है यानी मानता है। अर्थात् जो वस्तु, जो पदार्थ जैसा होता है, वैसा ही समकित दृष्टि देख सकता है, और दूसरों को बताता है।

मिथ्यात्व के अन्धकार में जो वस्तु जैसी होती है वैसी दिखती ही नहीं है, फिर बताने की तो बात ही कहाँ ? गलत दिखेगा, अशुद्ध दिखेगा तो अशुद्ध बतायेगा। सही दिखेगा, शुद्ध दिखेगा तो शुद्ध बतायेगा।

"कुमारपाल चरित्र" में नागपुर के श्रेष्ठि धनद की एक घटना बतायी गयी है। आचार्यदेवश्री देवचन्द्रसूरीश्वरजी खंभात से विहार करते करते नागपुर पधारे। नागपुर के श्री जैन संघ में अपूर्व उल्लास छा गया। लोग आचार्यदेव के प्रवचन सुनने उमड़ने लगे। श्री सोमचन्द्र मुनि अपनी अपूर्व विद्वत्ता से एवं वाचनशक्ति से बहुत ही लोकप्रिय बन गये।

इधर नागपुर में धनद नाम का धनाढ्य श्रीमंत जो कि बड़ा दानवीर था, विशाल परिवारवाला था और जिसने जगह जगह निधान छिपाकर रखे थे, उसका दुर्भाग्य उदय में आया और सारी सम्पत्ति चली गई। इतनी दरिद्रता आ गयी कि विशाल हवेली की मात्र दीवारें बच गईं। सब कुछ बिक गया। दो समय पूरा भोजन भी नहीं मिलता था। धनद श्रेष्ठि को इस समय वे निधान याद आये, जो जमीन में जगह जगह गाड़े थे। उसके मन में उल्लास जगा। उसने वे निधान बाहर निकाले। परन्तु उसने देखा तो सोनामुहरों की जगह काले कोयले थे ! उसकी छाती बैठने लगी। वह भ्रमित सा हो गया। फिर भी अपने पापकर्मों का विचार करते करते कुछ स्वस्थ बना। हवेली के एक भाग में कोयले का ढेर लगा दिया····जो पहले निधान था ! सोना मुहरें थीं। धनद रोजाना उन कोयलों को देखता है और अपने दुर्भाग्य को कोसता है। वह अपनी सुशील पत्नी को कहता है।

'तावन्मतिः स्फुरति, वल्गतिशास्त्रमन्तः, शौन्डीर्यमुल्लसति भाति महत्त्वमुच्चैः
यावन्मनोरथ रथ प्रथिताद्रिमार्गे न प्रतिकूलिकतमत्वमुपैषि दैवः !!'

मनुष्य की बुद्धि तब तक ही उल्लसित रहती है और शास्त्रों की चर्चा करती है, मनुष्य का गर्व भी तब तक उछलता रहता है और मनुष्य का महत्व भी तब तक दिखायी देता है, जब तक दैव (दुर्भाग्य) उसके मनोरथरूप रथ के मार्ग में आकर खड़ा नहीं रह जाता है !"

धनद अपने परिवार के साथ समतापूर्वक दुःख का समय व्यतीत करता था। एक दिन, सोमचन्द्र मुनि, वीरचन्द्र गणी के साथ गोचरी लेने धनद श्रेष्ठि के घर पहुंचे। उस समय धनद परिवार के साथ हवेली के बाह्य भाग में बैठा था। सब के चेहरे म्लान थे। जैसे सभी बीमार हो वैसे लगते थे। नमक की राब सब पी रहे थे। सोमचन्द्र मुनि ने यह दृश्य देखा। हवेली को भी बाहर से और भीतर झांककर देखा। फिर उन्होंने वीरचन्द्रगणी को पूछा : महात्मन्

यह गृहस्थ इतना समृद्ध होते हुए भी एक रंक-निर्धन की तरह क्यों जी रहा है ? राजा की तरह यह खा-पी सकता है और सुन्दर मूल्यवान वस्त्र पहन सकता है !'

वीरचन्द्र गणी ने कहा : 'मुनिराज, तुम हमेशा श्रीमन्तों के वहाँ से भिक्षा लाते हो, इसलिए निर्धनों की परिस्थिति का अन्दाज तुम्हें कैसे हो सकता है ? तुम कभी दुःखी निर्धनों के घर भिक्षा लेने जाया करो तो वास्तविक परिस्थिति का ज्ञान हो सके !'

सोमचन्द्र मुनि ने कहा : हे महात्मन्, आप इस श्रेष्ठि को निर्धन·· दुखी क्यों कहते हो ? इसके घर में तो सोनामुहरों का ढेर पड़ा है··· मैं देख रहा हूं न ? सोमचन्द्रमुनि की बात सुनकर वीरचन्द्र मुनि की आँखें आश्चर्य से विस्फारित हो गई। उन्होंने धीरे से पूछा : कहां है वे सोनामुहरें ?' सोमचन्द्र मुनि ने इशारे से वह ढेर बता दिया।

पास में ही खड़ा धनद श्रेष्ठि, दो मुनिवरों की बातें सुनता है। उसने वीरचन्द्रजी को पूछा : 'गुरुदेव, ये बाल मुनिराज क्या कहते हैं ?

वीरचन्द्र मुनि ने सारी बात बता दी। धनद ने भी उस कोयले के ढेर की ओर देखा···उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। कोयला सोनामुहरें बन गया था !

पहले, धनद को जो कोयले दिखते थे, सोमचन्द्र मुनि को उसका शुद्ध रूप सोनामुहरें दिखता था। कोयला अशुद्ध रूप था ! धनद के दुर्भाग्य से सोना-मुहरें कोयले के रूप में दिखती थी। सोमचन्द्र मुनि के पुण्यप्रकर्ष से वे सोना-मुहरें दिखने लगी ! वैसे ही, मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से वस्तु का अशुद्ध स्वरूप दिखता है और सम्यग्दर्शन के प्रभाव से वस्तु का शुद्ध स्वरूप दिखता है।

धनद श्रेष्ठि हर्षविभोर हो गया। वह सोमचन्द्र मुनि के चरणों में गिर गया और बोला : 'हे मुनिराज, आप सचमुच महान् पुण्यशाली आत्मा हो। आप तरुण हैं फिर भी आप का अद्भुत प्रभाव प्रकाशित हो रहा है। आपके दृष्टिपात मात्र से, जो सोनामुहरें कोयला बन गई थी वे पुनः सोनामुहरें बन गई हैं। आपने यह सुवर्णदान देकर मुझे और मेरे परिवार को नया जीवन दिया है। हे महात्मन्, एक और कृपा करें इस सोनामुहरों के ढेर को आप स्पर्श करें, ताकि वह पुनः कोयले न बन जायें !'

सोमचन्द्र मुनि ने सोनामुहरों के ढेर को स्पर्श किया। धनद ने वह निधान मुनिवरों के देखते ही भण्डार में रख दिया। धनद और धनद के परिवार को अनहद आनन्द हुआ। सबके मुख खिल गये, सबके हृदय उल्लसित हो गये।

क्रमशः

चैत्रगच्छ का संक्षिप्त इतिहास

(डॉ० शिवप्रसाद सिंह)

पूर्वानुवृत्ति

४. १५२०	चैत्रवदि ५ शुक्रवार	लक्ष्मीसागरसूरि	संभवनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	अजितनाथ जिना० थोंपराशेरी, शधनपुर शधनपुर	मुनि विशालविजय, पूर्वोक्त, लेखांक-२२८
५. १५२०	पौषवदि १३ मंगलवार	,,	शांतिनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, कोबा, अहमदाबाद	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त भाग-१ लेखांक-८६९
६. १५२०	,,	,,	,,	जगवल्लभ पार्श्वनाथ देरासर, नीशापोल, अहमदाबाद	वही, भाग-१ लेखांक-११९६
७. १५२१	माघसुदि १ गुरुवार	,,	,,	चौमुखजी देरासर, ईडर	वही, भाग-१ लेखांक-१४५७
८. १५२१	माघ सुदि १३ (?) गुरुवार	,,	सुपार्श्वनाथ की धातु-प्रतिमा का लेख	जगवल्लभ पार्श्वनाथ देरासर, नीशापोल, अहमदाबाद	वही, भाग-१ लेखांक-११९५

९. १५२२	कार्त्तिक सुदि २ गुरुवार	लक्ष्मीसागरसूरि	वासुपूज्य की धातु की प्रतिमा का लेख	जैन मन्दिर, डभोई	वही, भाग-१ लेखांक-१५
१०. १५२९	ज्येष्ठ वदि १ शुक्रवार	,,	कुन्थुनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	महावीर जिनालय, पायधुनी, मुम्बई	मुनि कान्तिसागर पूर्वोक, लेखांक-२१०
११. १५३२	ज्येष्ठ सुदि ५ सोमवार	,,	शीतलनाथ की धातु की पंचतीर्थी प्रतिमा का लेख	शांतिनाथ जिना०, भानीपोल, शघनपुर	मुनि विशाल विजय, पूर्वोक्त, लेखांक-२८०
१२. १५३४	कार्तिक सुदि १३ रविवार	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	सुपार्श्वनाथ का बड़ा पंचायती मन्दिर, जयपुर	नाहर, पूर्वोक्त भाग-२, लेखांक-११६३
१३. १५३४	कार्तिक सुदि १३ रविवार	,,	शांतिनाथ की प्रतिमा का लेख	गौड़ीपार्श्वनाथ जिनालय, पालिताना	मुनि कांतिसागर, संपा० शत्रुंजय वैभव लेखांक-२१६

१४. १५३६	ज्येष्ठ सुदि ७ मंगलवार	लक्ष्मीसागरसूरि	विमलनाथ की प्रतिमा का लेख	पंचायती मन्दिर, सराफाबाजार, लश्कर, ग्वालियर	नाहर, पूर्वोक्त भाग २, लेखांक १४१०
१५. १५४७	माघ सुदि १३ रविवार	,,	श्रेयांसनाथ की धातु की प्रतिमा का लेख	चौमुख, शांतिनाथ देरासर, अहमदाबाद	मुनि बुद्धिसागर, पूर्वोक्त, भाग १, लेखांक ८८४

अभिलेखीय साक्ष्यों द्वारा चैत्रगच्छीय मलयचन्दसूरि की गुरु-परम्परा इस प्रकार निश्चित की जा चुकी हैं :

?
⋮
हरिप्रभसूरि
|
धर्मदेवसूरि [वि० सं० १३९१-१४३०]
|
पार्श्वचन्द्रसूरि (वि० सं० १४४६-१४६६)
|
मलयचन्द्रसूरि (वि० सं० १४७४-१५०३)

समसामयिकता के आधार पर पार्श्वचन्द्रसूरि के शिष्य मलयचन्द्रसूरि और चैत्रगच्छ की चन्द्रसामीय शाखा के लक्ष्मीसागरसूरि के गुरु मलयचन्द्रसूरि को एक ही व्यक्ति माना जा सकता है। लक्ष्मीसागरसूरि के पश्चात् इस शाखा का कोई उल्लेख नहीं मिलता, अतः यह कहा जा सकता है कि उनके बाद इस शाखा का अस्तित्व समाप्त हो गया होगा। चैत्रगच्छ की यह शाखा चन्द्रसामीय क्यों कहलायी, इस सम्बन्ध में हमें कोई सूचना प्राप्त नहीं होती।

५. सत्तषणपुराशाखा

इस शाखा से सम्बद्ध केवल दो प्रतिमायें मिली हैं, जो वि० सं० १५३०/ ई० सन् १४७४ में एक ही तिथि में, एक ही मुहुर्त्त में और एक ही आचार्य द्वारा प्रतिष्ठापित हुई हैं। ये प्रतिष्ठापक आचार्य हैं चैत्रगच्छीय सत्तषणपुरा-शाखा के आचार्य ज्ञानदेवसूरि। आचार्य विजयधर्मसूरि[१३] ने इन लेखों की वाचना इस प्रकार दी है:

संवत् १५३० वर्षे पो (पौ) ष वदि ६ खौ श्रीश्रीमालज्ञातीय श्रे० देपाल भा० हरपू सुत भूमाकेन भा० माल्हण्दे हेदान (नि) मित्तं खुसुवसहितेन स्वयं (श्रे) यस (से) श्रीवासुपूज्यबिंबं क० (का०) श्रीचे (चै) त्रगछे (च्छे) श्रीज्ञान-देवसूरिभिः प्रतिष्ठित (ष्ठितं) त······न्य० ग्राम······

वासुपूज्य की धातुप्रतिमा पर उत्कीर्ण लेख

प्रतिष्ठास्थान—**आदिनाथ जिनालय**, जामनगर

"संवत् १५३० वर्षे पौष वदि ६ खौ श्रीश्रीमालज्ञा० श्रे गेला भा० पूरी सु० रत्नाकेन भा० रूपिणि द्वि० भा० कीरूसहितेन स्वपितृपूर्वजन् (नि) मित (त्तं) आत्मश्रेयोर्थं श्रीवासुपूज्यबिंबं का० प्र० चैत्रगच्छे सलषणपुरा भ० श्रीज्ञानदेवसूरिभिः"

चैत्रगच्छीय धारणपद्रीय (थारापद्रीय) शाखा के लक्ष्मीसागरसूरि के शिष्य ज्ञानदेवसूरि (वि० सं० १५२७-१५३०, प्रतिमालेख) का उल्लेख मिलता है। ये दोनों ज्ञानदेवसूरि एक ही व्यक्ति हैं या अलग-अलग, इस सम्बन्ध में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कह पाना कठिन है।

६-७. कम्बोइयाशाखा और अष्टापदशाखा—राजगच्छपट्टावली[१४]

(रचनाकार, अज्ञात, रचनाकाल वि० सं० की १६वीं शती का अन्तिम चरण) में चैत्रगच्छ की इन दो शाखाओं का उल्लेख है, परन्तु किन्हीं अन्य साक्ष्यों से उक्त शाखाओं के बारे में कोई जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती।

८. शार्दूलशाखा

चैत्रगच्छ की इस शाखा का एकमात्र लेख वि० सं० १६८६/ई० सन् १६३० का है।[१५] इस लेख में राजगच्छ के एक अन्वय के रूप चैत्रगच्छ की उक्त शाखा का उल्लेख है। इस शाखा के सम्बन्ध में अन्यत्र किसी भी प्रकार का कोई विवरण अनुपलब्ध है।

९. देवशाखा

जैसा कि पूर्व में हम देख चुके हैं (**दशवैकालिकसूत्र**) को वि० सं० १७६८/ई० सन् १७१२ की प्रतिलिपित प्रशस्ति में चैत्रगच्छ की देवशाखा का उल्लेख है[१६] इस शाखा के प्रवर्त्तक कौन थे, यह कब अस्तित्त्व में आयी, इस बारे में कोई विवरण प्राप्त नहीं होता। चैत्रगच्छ तथा उसकी किसी शाखा का उल्लेख करने वाला अंतिम साक्ष्य होने से यह महत्त्वपूर्ण है।

ऐसा प्रतीत होता भर्तृपुर (भटेबर), थारापद्र (थराद) और सलषणपुर में चैत्रगच्छ का उपाश्रय बन जाने पर वहां के चैत्रगच्छीय आचार्यों के साथ उक्त स्थानवाचक विशेषण जोड़ा जाने लगा होगा। इनमें सलषणपुरा शाखा का अस्तित्त्व तो अल्पकाल में ही समाप्त हो गया किन्तु भतृपुरीय और थारापद्रीय-शाखा का लगभग २०० वर्षों तक अस्तित्त्व बना रहा।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि यह गच्छ ई० सन् की १२वीं शती के प्रारम्भ में अस्तित्त्व में था और १८वीं शती के प्रथमचरण तक विद्यमान रहा। लगभग ६०० वर्षों के लम्बे इतिहास में इस गच्छ के मुनिजनों (गुणाकर-सूरि, चारुचन्द्रसूरि आदि को छोड़कर) ने न तो स्वयं कोई ग्रन्थ लिखा और न हीं किन्हीं ग्रन्थों की प्रतिलिपि करायी, बल्कि प्रतिमाप्रतिष्ठापक के रूप में अपनी भूमिका निभाते रहे। धनेश्वरसूरि, भुवनचन्द्रसूरि, देवभद्रसूरि और जगच्चन्द्रसूरि को छोड़कर इस गच्छ में ऐसा कोई प्रभावक आचार्य भी नहीं हुआ, जो श्वेताम्बर श्रमण परम्परा में विशिष्ट स्थान प्राप्त कर सकता। ई० सन् की १८वीं शताब्दी के प्रथम चरण के बाद इस गच्छ से सम्बद्ध साक्ष्यों के अभाव से यह सुनिश्चित है कि इस समय के बाद इस गच्छ का स्वतन्त्र अस्तित्व समाप्त हो गया होगा और इस गच्छ के अनुयायी किन्हीं अन्य गच्छों में सम्मिलित हो गये होंगे।

पाद-टिप्पणी

१. अगरचन्द नाहटा —"जैन श्रमणों के गच्छों पर संक्षिप्त प्रकाश" **यतीन्द्रचन्द्रसूरि अभिनन्दनग्रन्थ** (आहोर, १९५८ ई०) पृष्ठ १४७ पर श्री नाहटा द्वारा उद्धृत मुनि बुधिसागर का मत।
मुनि कान्तिसागर **शत्रुञ्जयवैभव** (कुशल संस्थान, जयपुर १९९० ई०) पृ० २६९

२. तपागच्छीय देवेन्द्रसूरि कृत **श्राद्धदिनकृत्यप्रकरण** की प्रशस्ति Muni Punya Vijaya—Catalogue of palm-Leaf manuscripts in the Shantinath Jain Bhandara, Canbay (G. O. S. No. 149 Part two, Baroda 1966 S. D.) pp. 263-265.
तपागच्छीय क्षेमकीर्तिसूरि कृत **बृहत्कल्पसूत्रकृति** (रचनाकाल वि० सं० १३२२/ई० सन् १२५६) की प्रशस्ति
C. D. Dalal—A Descriptive catalogue of Manuscripts in the Jain Bhandara at pattan (G. O. S. No. LXXUI, Baroda 1937 S. D.) pp. 354-356.
तपागच्छीय विभिन्न पट्टावलियों के संदर्भ में द्रष्टव्य—
त्रिपुटीमहाराज संपा० **पट्टावलीसमुच्चय** भाग-१,२ (चरित्रस्मारक ग्रन्थ-माला, ग्रन्थांक २२ एवं ४४, अहमदाबाद १९३३-१९५० ई०)
मुनि जिनविजय—संपा० **विविधगच्छीयपट्टावलीसंग्रह** (सिंघी जैन ग्रन्थ-माला, ग्रन्थांक-५३, बम्बई १९६१ ई०)।
मुनिकल्याणविजय गणि—संपा० **श्रीपट्टावलीपरागसंग्रह** (कल्याणविजय शास्त्र संग्रह समिति, जालोर, ई० सन् १९६६)

३. A. P. Shah—Catalogue of Sanskrit and Prakrit Mss Muni Shri Punyavijayajee Callection (L. D. Series No. 2, Ahmedabad—1963 S. D) Part-I pp. 131, No. 2554

४. Ibid, Part-I, p-93 No. 1464

५. Ibid, Part-I, p.93 No. 1018

६. द्रष्टव्य—पाद टिप्पणी क्रमांक-२

७. त्रिपुटी महाराज—**जैनतीर्थोनो इतिहास** (श्री चारित्रस्मारक ग्रन्थमाला अहमदाबाद, १९४९ ई०) पृष्ठ ३८५ और आगे

८. G. C. Choudhary—Political History of Northern India (Sohanlal Jaindharma Pracharak Samiti, Amritsar 1954 S.D.) pp. 172-173.)

९. पूरनचन्द्र नाहर,—संपा० **जैनलेखसंग्रह** भाग-२ (कलकत्ता १९२७ ई०) लेखांक १९४९.—तथा
विजयधर्मसूरि—संग्राहक **प्राचीनलेखसंग्रह** (यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर, १९२९ ई०) लेखांक-३९

१०. मुनि जयन्तविजय—संपा० **अर्बुदप्राचीन जैन लेख संदोह** (विजयधर्मसूरि जैन ग्रंथमाला, पुष्प ४०, छोटा सराफा, उज्जैन, वि० सं० १९९४ लेखांक-५३५

११. त्रिपुटी महाराज—**जैन तीर्थोनो इतिहास** पृष्ठ ३८५ और आगे

१२. मुनि बुद्धिसागरसूरि—संपा० **जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह** भाग-२ (श्री अध्यात्मज्ञान प्रसारक मंडल, पादरा, ई० सन् १९२४) लेखांक-७५४

१३. आचार्य विजयधर्मसूरि—पूर्वोक्त, लेखांक-४२८-४२९

१४. मुनिजिन विजय—पूर्वोक्त, पृष्ठ ५७-७१

१५. मुनिजिनविजय—संपा० **प्राचीन जैन लेख संग्रह** भाग-२ (जैन आत्मानन्दसभा, भावनगर, १९२१ ई०) लेखांक-३९८
पूरनचन्द नाहर, पूर्वोक्त भाग-१, लेखांक-८३०

१६. द्रष्टव्य—पादटिप्पणी, क्रमांक-५

समाप्त

सौजन्य से :

ARBEITS INDIA

Export House recognised by Govt. of India

Proprietor : **SANJIB BOTHRA**

8/1, MIDDLETON ROW,
5th Floor, Room No. 4
CALCUTTA-700 001

Phone : 201029/6256/4730
Telex : 021-2333 ARBI IN
Fax No. : 0091-33290174

प्राकृत आगमेतर जैन श्रीकृष्ण साहित्य

श्रीकृष्ण चरित्र को समग्र जैन साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। जैन साहित्य और श्रीकृष्ण चरित्र का पारस्परिक सम्बन्ध बड़ा मूल्यवान रहा है। जहाँ श्रीकृष्ण की चारित्रिक विशेषताओं तथा उनकी महत्ता के प्रचार-प्रसार का श्रेय जैन साहित्य को प्राप्त होता है, वहाँ यह भी सत्य है कि श्रीकृष्ण के विभिन्न प्रसंगों के माध्यम से जैन धर्म के सिद्धांतों के प्रतिपादन और जन सामान्य में उनके प्रचार के कार्य में भी किसी सीमा तक सहायता मिली है। जैसा कि पूर्व में वर्णित किया जा चुका है, श्रीकृष्ण जीवन के प्रसंग जैन साहित्य में सर्वप्रथम आगमों में समाविष्ट हुए हैं। आगम ग्रन्थों का स्वरूप समझने के क्रम में यह सारा तथ्य स्वयं स्पष्ट हो जाता है। प्रस्तुत अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का एक अत्यन्त स्तुत्य, समर्थ और सफल प्रयत्न यह रहा है कि उन्होंने अपने धार्मिक विचारों का जनता में प्रचार करने के लिए तत्कालीन जनप्रिय लोक भाषाओं और कथाओं का आश्रय लिया। इन कथाओं को जनता पीढ़ियों से समझी हुई थी तथा इन्हें हृदयंगम किये हुए थी। अतः इनमें पाया जाने वाला साम्य स्थिर करके भगवान ने अपने विचारों को सुगमता के साथ जनमानस का अंग बना दिया। जिन लोक प्रचलित और जनप्रिय कथाओं के चुनाव का अपने प्रयोजन से भगवान ने चयन किया और जिनका उपयोग किया, उनमें श्रीकृष्ण के जीवन की कथाएं भी सम्मिलित रहीं। ऐसा होना श्रीकृष्णचरित्र की तत्कालीन लोकप्रियता के आधार पर स्वाभाविक ही लगता है।

स्रोत

इस प्रकार जब भगवान महावीर ने श्रीकृष्ण के जीवन की विभिन्न घटनाओं का उल्लेख अपने उपदेशों के अन्तर्गत, अपने ही ढंग से किया तो उनके प्रवचनों में श्रीकृष्ण के जीवन का कोई क्रमबद्ध वृत्तांत उभर कर प्रकट नहीं हो सकता। जहाँ जिस सिद्धांत के स्पष्टीकरण एवं प्रतिपादन के लिए या पुष्टि के लिये भगवान ने श्रीकृष्ण जीवन की जिस घटना का प्रयोग वांछनीय समझा और अनुभव किया, उसे उपयुक्त स्थान जैन कथा में दिया। कालांतर में भगवान के शिष्य गणधरों ने भगवान के उपदेशों को संग्रहीत किया, उन्हें लिखित रूप देने का प्रयास भी किया। ये लिखित अलिखित रूप ही जैन आगम है।

उल्लेख विशृंखलनीय

स्पस्ट है कि जैन आगम ग्रन्थों में श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंगों को यद्यपि अति महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त अवश्य ही हुआ है किन्तु ये उल्लेख विशृंखलित रूप में हैं। आगमों में श्रीकृष्ण के जीवन चरित्र का कोई क्रमिक विकास दृष्टि-गोचर नहीं होता। न ही यह कहा जा सकता है कि आगमों में श्रीकृष्ण के जीवन को सम्पूर्णत. ग्रहण कर लिया गया है। केवल प्रतिपाद्य विषयों में सहायक रहने की क्षमता वाले प्रसंग ही इसमें समाविष्ट हुए हैं। आगमेतर ग्रन्थों (परिवर्ती ग्रन्थों) में श्रीकृष्ण जीवन की इन बिखरी-बिखरी घटनाओं को क्रमिक और व्यवस्थित रूप दिया गया है। यथावश्यकतानुसार शून्य स्थलों की पूर्ति का भी मूल्यवान उपक्रम हुआ है। परिणामतः इन परवर्ती ग्रन्थों में श्रीकृष्ण चरित्र जैसी कोई वस्तु मेरे दृष्टिगत होने लगी है। श्रीकृष्ण के भव्य चरित्र की एक झांकी प्रस्तुत होने लगी है। इनके माध्यम से श्रीकृष्ण सम्बन्धी जैन मान्यता स्पष्टता के साथ अभिव्यक्त हुई। यह मान्यता इस पक्ष में पायी जाती है कि श्रीकृष्ण एक अत्यन्त बलशाली, पराक्रमी, तेजस्वी महामानव थे। वैदिक परम्परा के श्रीकृष्ण के अवतारी और चमत्कारी दिव्य रूप को जैन मान्यता ने स्वीकार्य नहीं समझा। जैन श्रीकृष्ण साहित्य में उल्लेखित सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक रूप एवं मूलाधार को स्वीकारते हुए जैन परम्परा में श्रीकृष्ण चरित्र का वर्णन बड़े ही व्यापक रूप में हुआ है। वे सर्वत्र शक्तिशाली रूप में वर्णित हुए। जैन परम्परानुसार श्रीकृष्ण गुणशील, सदाचारी, ओजस्वी, वर्चस्वी एवं यशस्वी महापुरुष थे। उन्हें जैन ग्रन्थों में अमोधबली, अतिबलि, महाबली, अप्रतिहत और अपराजित रूप में चित्रित किया गया है। उनका शारीरिक बल इतना विपुल था कि वे सुगमता के साथ महारत्न वज्र को भी चुटकी में मसलकर चूर्ण कर देते थे।

महापुरुषों का आभ्यंतर सौन्दर्य

बाह्य एवं आभ्यंतरिक सौन्दर्य अन्योन्याश्रित हुआ करता है। महापुरुषों में भव्य आंतरिक सौन्दर्य होता है। इसकी प्रतिच्छवि स्वरूप उनका बाह्य व्यक्तित्व भी सौन्दर्य सम्पन्न एवं आकर्षक होता है। ये ओज तेज से युक्त व परमशक्ति सम्पन्न होते हैं। जैन मान्यता भी इस तथ्य की समर्थक रही है। यही कारण है कि इस परम्परा में मान्य सभी विशिष्ट पुरुष आकर्षक व प्रभाव-शाली व्यक्तित्व वाले हैं। प्रज्ञापना सूत्र (२३) के अनुसार जैन दृष्टि से जो ६३ श्लाघनीय पुरुष (शलाका पुरुष) हुए हैं वे सभी अत्युत्तम शारीरिक संस्थान वाले थे। हारिभद्रीयावश्यक' में उनके शरीर की प्रभा को निर्मल स्वर्ण-

रेखा के समान वर्णित किया गया है। जैन परम्परा में ६३ शलाका पुरुषों में श्रीकृष्ण की भी गणना होती है। वे नवम वासुदेव हुए हैं।

शलाका पुरुषों की भाँति ही श्रीकृष्ण का शरीर मान, उन्मान और प्रमाण में पूरा सुजात और सर्वांग सुन्दर था। वे लक्षणों और गुणों से युक्त थे। उनका शरीर दस धनुष लम्बा था। वे बड़े ही कान्त, सौम्य, सुभग स्वरूप वाले अत्यन्त प्रियदर्शी थे। वे प्रभल्म, धीर और विनयी थे। वे सुखशील थे, किन्तु प्रमादी नहीं अपितु उद्योगी प्रवृत्ति के थे। उनकी वाणी गम्भीर, मधुर और स्नेहयुक्त थी, और वे सत्यवादी थे। उनकी गति श्रेष्ठ गजेन्द्र-गति सी लगती थी। उनका मुकुट कौस्तुभमणि जटित था। उनके कानों में कुण्डल और वक्ष पर एकावली सुशोभित रहती थी। वे धनुर्धर थे। वे शंखचक्र गदाशक्ति और पद्म धारण करते थे। वे उच्च गरुड़ ध्वजा के धारक थे। 'प्रश्नव्याकरण' के एक उल्लेख के अनुसार श्रीकृष्ण शत्रुओं का मर्दन करने वाले, युद्ध में कीर्ति प्राप्त करने वाले अजित और अजितरथ थे। एतदर्थ वे महारथी भी कहलाते थे।[१] श्रीकृष्ण सर्वगुण सम्पन्न, श्रेष्ठ चरित्र वाले दयालु, शरणागत-वत्सबल, धर्मात्मा, कर्त्तव्यपरायण, विवेकशील और नीतिवान थे।

वीरश्रेष्ठ श्रीकृष्ण जैनियों की दृष्टि में

उपर्युक्त स्वरूप में श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व जैन ग्रन्थों में चित्रित मिलता है। जैन दृष्टि से श्रीकृष्ण 'वीरश्रेष्ठ' रूप में सम्मान्य हैं। वे शलाकापुरुष[२] व नवम वासुदेव हैं।[३] वासुदेव परम्परा का प्रत्येक महापुरुष महान वीर, अर्द्ध चक्रवर्ती शासक होता है। श्रीकृष्ण का भी यही स्वरुप रहा। हैवैताढ्यगिरि (विंध्याचल) से समुद्र पर्यन्त समस्त दक्षिण भारत के वे एक-छत्र अधिपति थे।

बारवइए नयरीए अद्धभरहस्स य समस्स य आहेवच्चं जाव विहरइ।

—अन्तकृद्दशा सूत्र

दक्षिण भरतार्द्ध के स्वामी श्रीकृष्ण का उत्तर भारत की राजनीति में भी वर्चस्व रहा। उन्होंने अपने सशक्त प्रतिद्वन्द्वी जरासंध व उसके सहायक कौरवों

---

१. प्रश्नव्याकरण : अध्याय ४, पृ० १२१७

२. शलाकापुरुप का तात्पर्य महापुरुष से है। जैन परम्परा में ६३ शलाकापुरुष हुए हैं। इसमें से २४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ बलदेव, ९ प्रतिवासुदेव भी होते हैं।

३. नवमों वासुदेवोयमिति देवा जगुस्तदा।

—हरिवंशपुराण ५५/६०

को पराभूत करके हस्तिनापुर के राज्यासन पर पांडवों को प्रतिष्ठित कर दिया था। यही नहीं, अपितु ३० भारत के तथा अन्य अनेक अनीतिकारी और अत्याचारी शासकों को नाशकर उनके स्थान पर अनेक उत्तराधिकारियों को शासक बनाकर भी श्रीकृष्ण ने अपना यह वर्चस्व सिद्ध कर दिया था। एक प्रकार से उन्हें अखिल भारतीय राजनैतिक महत्ता प्राप्त थी। उन्होंने देश की विशृंखलित राजनैतिक शक्तियों को संगठित करने का स्तुत्य और सफल प्रयत्न भी किया। जैन साहित्य की एक और भी यह उपलब्धि रही है कि इसके माध्यम से भारतीय इतिहास के कतिपय ऐसे तथ्य प्रकाश में आए हैं, जो सामान्यतः लुप्त प्राय: रहे हैं। ये सामान्य ऐतिहासिक तथ्य इस प्रकार है :

(१) तत्कालीन जैन धर्म के उच्चतम नेता भगवान अरिष्टनेमि वासुदेव श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे।

(२) ये २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथ के रूप में इतिहासख्यात रहे हैं। यह बात और है कि कतिपय विद्वज्जन भगवान महावीर स्वामी के पूर्व के २३ तीर्थंकरों के विषय में प्रामाणिकता नहीं मानते।

(३) वस्तुतः यह हमारे इतिहास का अपूर्णताजनित भ्रम है।

(४) अन्यथा भगवान पार्श्वनाथ एवं भगवान नेमिनाथ की ऐतिहासिक प्रामाणिकता में संदेह के लिये अब कोई अवकाश ही नहीं रह गया है। ऋग्वेद और यजुर्वेद जैसे प्राचीन ग्रन्थों में अरिष्टनेमि के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।

भगवान अरिष्टनेमि और श्रीकृष्ण अन्योन्याश्रित

वस्तुस्थिति यह है कि श्रीकृष्ण के प्रसंगों के बिना भगवान अरिष्टनेमि चरित्र अपूर्ण ही रह जाता है। साथ ही जहाँ श्रीकृष्ण चरित वर्णित हुआ है वहाँ अरिष्टनेमि प्रसंग उसके अनिवार्य-अंग के रूप में विद्यमान रहा है। कतिपय ग्रन्थों में तो श्रीकृष्ण की महत्ता भगवान अरिष्टनेमि की अपेक्षा भी अधिक उभरी है। उनकी अपनी गरिमा तो रही है, साथ ही भगवान नेमिनाथ के जीवन और परिवार से सम्बद्ध रहने के कारण भी जैन साहित्य में श्रीकृष्ण को पर्याप्त सम्माननीय स्थान और गौरव प्राप्त हुआ है। भगवान के अत्युच्च गरिमापूर्ण धर्मव्यक्तित्व के प्रति श्रीकृष्ण के मन में सदा श्रद्धा का स्थान रहा है। भगवान द्वारा संकेतित करुणा और अहिंसा के मार्ग पर श्रीकृष्ण भरसक गतिशील रहे। यह इस बात का प्रतीक है कि श्रीकृष्ण धर्म के प्रति अतिशय रुचिशील थे। वे करुणा, मैत्री और अहिंसा की महती भावनाओं से इतने अधिक प्रभावित हुए कि उन्होंने हिंसापरित यज्ञों का विरोध करते हुए उन यज्ञों की उत्तमता का समर्थन किया जिनमें जीवहिंसा का समावेश नहीं था।

यहीं नहीं, उन्होंने यज्ञों की अपेक्षा कर्म को अधिक महत्वपूर्ण माना और कर्म के लिए वे सबल प्रेरक बने। जब जब भगवान नेमिनाथ स्वामी का द्वारका आगमन हुआ, श्रीकृष्ण समस्त राजकाज छोड़कर भगवान के दर्शनार्थ उनकी सभा में जाते थे। ऐसे अनेक प्रसंग आगमतेर ग्रंथों में वर्णित मिलते हैं।[१] वासुदेव होने के नाते वे स्वयं संयम मार्ग के अनुयायी नहीं हो सके, किन्तु उन्होंने स्वयं ही भगवान के समक्ष संकल्प ग्रहण किया था कि "मैं इस मार्ग के अनुसरण हेतु अधिकाधिक जनों को प्रेरित करता रहूँगा।" उनकी पुत्रियों द्वारा संयम ग्रहण इसका सबल प्रमाण है। उनके कुटुम्ब के अनेक सदस्यों ने भगवान से प्रव्रज्या ग्रहण की जिनमें उनकी रानियाँ पुत्रादि भी सम्मिलित है। श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व का यह उज्ज्वल पक्ष उन्हें जैन साहित्य में प्रमुख स्थान दिलाने में बड़ा सहायक रहा है। यही कारण है कि पांडवों, प्रद्युम्नकुमार गजसुकुमाल आदि से सम्बद्ध इन रचनाओं में श्रीकृष्ण का वृतांत सविस्तार-पूर्वक दिया गया है। श्रीकृष्ण में जो धर्मानुराग की विशेषता है, उसके कारण जैन ग्रन्थकारों ने उनका चरित्र अपने अनुरूप पाया और उसका खूब बखान किया। प्राचीन और अर्वाचीन सभी भाषाओं के जैन साहित्य में कृष्णचरित्र विवेचन मिलता है। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, हिन्दी व कन्नड, तमिल, तेलगु गुजराती, मराठी आदि प्रादेशिक भाषाओं में भी ऐसे जैन ग्रन्थों की भरमार है जिनमें श्रीकृष्ण चरित्र किसी न किसी रूप में अपनाया गया है।

श्रीकृष्ण महत्व

आगमेतर प्राकृत जैन साहित्य में श्रीकृष्ण को समुचित महत्व दिया गया गया है। एतएव इसी स्तर पर यहाँ विवेचन है। इस वर्ग के साहित्य में भी श्रीकृष्ण का वैसा ही शुभ्र धवल करुणाशील और पराक्रमी स्वरूप स्थापित हुआ है, जो आगमों में प्रतिष्ठित हो चुका था। आगमतेर साहित्य के लिए आगम ही आदर्स और आधारभूत स्रोत रहे हैं। अतः मूल ग्रन्थों के साथ इन आगमतेर ग्रन्थों में इतना साम्य भी स्वाभाविक ही लगता है। आगमतेर ग्रंथों का एक सारा विभाग तो ऐसा है जिसमें आगमों की व्याख्या के ही अनेक रूप मिलते हैं। यथा—नियुक्ति, चूर्णि, भाष्य, टीका आदि। इनके अतिरिक्त भी अनेक स्वतंत्र आगमेतर ग्रंथों में श्रीकृष्ण चरित्र उपलब्ध होता है, ऐसे ग्रंथों में 'हरिवंश चरियं' सर्वप्रथम ग्रन्थ माना जाता है जिनके रचनाकार विमल सूरि थे, किन्तु यह कृति अनुपलब्ध है। श्री नाथूराम प्रेमी

---

१. अन्तगड सूत्र—३, २३, ५२, ६८ देखिए।

के मतानुसार (जैन साहित्य और इतिहास के पृ० ८७) चरित्रं साहित्य की परम्परा में लेखक की रचना 'पउम चरियं' को भी उल्लेखनीय स्थान प्राप्त है।

(१) वसुदेव हिण्डी-संघदासगणी

प्रस्तुत ग्रंथ आगमेतर रचनाओं में ऐसी प्राचीनतम उपलब्ध कृति है जिसमें श्रीकृष्ण जीवन के प्रसंगों का चित्रण है। वसुदेव हिण्डी का रचना काल ईसा की ५वीं शताब्दी माना जाता है।[१] ग्रन्थ के पूर्वभाग के रचनाकार संघदास गणि वाचक रहे हैं, किन्तु इसके उत्तरभाग की रचना धर्मसेन गणि द्वारा हुई ऐसी मान्यता रही है वसुदेव श्रीकृष्ण के पिता थे। उन्हीं का भ्रमण वृत्तांत प्रस्तुत ग्रन्थ में है। देवकी लम्बक में श्रीकृष्ण के जन्म आदि का वर्णन है। पीठिका में प्रद्युम्न, शांबकुमार की कथा और श्रीकृष्ण की ९ अग्रमहिषियों का वर्णन है। साथ ही रुक्मिणी से प्रद्युम्नकुमार का जन्म, उसका अपहरण, माता-पिता से उसका पुनर्मिलन आदि की घटनाओं का भी वर्णन मिलता है। प्रद्युम्नकुमार के पूर्वभवों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसी प्रकार जाम्बवती से शाम्बकुमार का जन्म और उसके जीवन की अन्यान्य घटनाएँ भी वर्णित की गयी हैं। इसके अतिरिक्त हरिवंश की उत्पत्ति, कंस के पूर्वभव और कौरव पांडवों का वर्णन भी किया गया है।

वसुदेव हिण्डी के पूर्व भाग में २९ लंभक और ११ हजार श्लोक और उत्तर भाग में ७१ लंभक और १७ हजार श्लोक हैं। इस ग्रन्थ की शैली में गुणाढ्य कृत बृहत्कथा की शैली के दर्शन होते हैं। कथासरित्सागर की भूमिका में डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी इस वास्तविकता की ओर संकेत किया है।[२] वसुदेव हिण्डी की भाषा प्राचीन महाराष्ट्रीय प्राकृत है।[३]

कथा का विभाजन ६ अधिकारों में किया गया है—कहुप्पत्ति (कथा-उत्पत्ति), पीढिया (पीठिका), मुँह (मुख), पडिमुह (प्रतिमुख), सरीर (शरीर) और उवसंहार (उपसंहार)। कथोत्पत्तिपूर्ण होने पर धम्मिल्ल-हिण्डी (धम्मिल चरित) प्रारंभ होता है और इसके पूर्ण होने पर क्रमशः पीठिका मुख प्रतिमुख

---

१. प्राकृत साहित्य का इतिहास—डॉ० जगदीशचन्द्र जैन, पृ० ३८२।

२. कथा सरित्सागर की भूमिका : लेखक—श्री वासुदेवशरण अग्रवाल।

३. वसुदेव हिण्डी : मुनि पुण्यविजयजी द्वारा संपादित, आत्मानन्द जैन ग्रंथ माला भावनगर की ओर से सन् १९३०-३१ में प्रकाशित। इसका गुजराती भाषांतर प्रोफेसर सांडेसरा ने किया है जो उक्त ग्रन्थमाला की ओर से ही भावनगर से वि० सं० २००३ में प्रकाशित हुआ है। देखिये गुजराती अनुवाद।

प्रारम्भ होते हैं। उसके बाद प्रथम खण्ड के प्रथम अंश में सात लंभक हैं। यहीं से शरीर विभाग प्रारंभ होता है जो दूसरे अंश के २९वें लंभक तक चलता है। वसुदेव के परिभ्रमण की आत्मकथा का विस्तार इसी विभाग से प्रारम्भ होता है। उक्त लंभकों में १९ और २०वें लंभक अनुपलब्ध हैं तथा २८वां लंभक अपूर्ण है।

इसके द्वितीय खण्ड में नरवाहनदत्त की कथा वर्णित है। उसमें श्रृंगार-कथा की मुख्यता है तथापि इस कथा में धर्म का उपदेश भी यथास्थान सम्मिलित किया गया है। कुल मिलाकर दोनों खण्डों में १०० लंभकों का समावेश है। द्वितीय खण्ड के अनुसार वसुदेव १०० वर्ष तक परिभ्रमण करते हैं तथा १०० कन्याओं के साथ उनका विवाह होता है। गद्यात्मक समासांत पदावली में लिखी गयी इस विशिष्ट रचना की भाषा सरल, स्वाभाविक व प्रसादगुण युक्त है। मुख्य कथा के साथ अनेक दंतकथाएँ तीर्थंकर शलाकापुरुषों की भी हैं। साथ ही जैन धर्म सम्बन्धी महाव्रतों का स्वरूप, परलोक सिद्धि, मांसभक्षण दोष आदि तत्वों का विवेचन भी किया गया है। कहुप्पत्ति के अंत में वसुदेव चरित की उत्पत्ति बतलाई गयी है। मुख नामक अधिकार में शंब और भानु की क्रियाओं का वर्णन है। भानु के पास शुक था और शंब के पास सारिका, दोनों सुभाषित कहते हैं। यथा :

उक्कामिव जोइभालिणीं सुभुयंगामिव पुप्फियं लतं।
विबुधो जो कामवत्तिणि, मुयइ सो सुहिओ भविस्सइ॥

अर्थात् अग्नि से प्रज्वलित उल्का की भाँति और भुजंगी से युक्त पुष्पित लता की भाँति जो पंडित कामवर्त्तिनी (काममार्ग) का त्याग करता है वह सुखी होता है।

प्रतिमुख में अंधकवृष्णि का परिचय देते हुए कवि ने उसके पूर्वभव का सम्बन्ध बताया है।

शरीर अध्ययन प्रथम लंभक से आरम्भ होकर २९वें लंभक तक पूर्ण होता है। सामा विजया नाम के प्रथम लंभक में समुद्रविजय आदि नौ वसुदेवों के पूर्वभवों का वर्णन है। वसुदेव घर का त्यागकर चलते हैं सामली का परिचय लंभक में दिया गया है। विष्णुकुमार का चरित गन्धर्वदत्ता लंभक में है। नीलांजना में ऋषभदेव का वर्णन करते हुए उनके जन्म, राज्याभिषेक, प्रव्रज्या आदि का वर्णन है। उग्र, भोग, राजन्य और नाग ये चार गण कौशल जनपद में राज्य करते थे। ऋषभदेव ने प्रजा को अनेक प्रकार की कलाएँ सिखलायी।

सोमसिरि लंभक में आर्य अनार्य, वेदों की उत्पत्ति, ऋषभ का निर्वाण, बाहुबलि और भरत का युद्ध, नारद, पर्वत और वसु का सम्बन्ध तथा वसुदेव

के वेदाध्ययन का प्ररूपण है। सप्तम लंभक के पश्चात् प्रथम खण्ड का द्वितीय अंश आरम्भ होता है। पउमा लंभक में धनुर्वेद की उत्पत्ति बताई है। पुंडा लंभक में पोरागम (पाकशास्त्र) में विशारद नन्द और सुनन्द का नामोल्लेख है। पुंड्रा की उत्पत्ति तथा नमि जिनेन्द्र द्वारा प्रदत्त चातुर्याम धर्म का उपदेश वर्णित है। सोमसिरि लंभक में इन्द्रमह का उल्लेख है। मयण गा लंभक में सनत्कुमार चक्रवर्ती का व्यापक शाला में पहुंचकर तेलमर्दन कराना, कान्यकुब्ज की उत्पत्ति का वृत्तान्त, राम का जीवन वृत्त, आदि वर्णन उपलब्ध होते हैं। बालचन्दा लम्भक में मांसभक्षण निषेध का उपदेश दिया गया है। बन्धुमती लंभक में वसुदेव द्वारा दिया गया है तापसों को उपदेश व महाव्रतों का विवेचन है। साथ ही मृगध्वजकुमार तथा भद्रकमहिष के चरित-वर्णन भी हैं।

१९ व २०वाँ लंभक नष्ट हो गया है। केवल मती लंभक में शांतिजिन का जीवन चरित, त्रिविष्टप् तथा वासुदेव का परस्पर सम्बन्ध, मेघरथ के आख्यान में जीवन की प्रियता को बतलाते हुए कवि ने लिखा है।[१]

> **हतूण परप्पाणे अप्पाणं जो करइ सप्पाणं।**
> **अप्पाणँ दिवसाणँ, कएण नासेइ अप्पाणं॥**
> **दुक्खस्स उव्वियेतो, हेतूण परेइ पडियाएँ।**
> **पाविहिति पुणो दुक्खं, बहुययरं तन्निमित्तेण॥**

अर्थात् जो दूसरों के प्राणों की हत्या करके अपने को सप्राण करना चाहता है, वह आत्मा का नाश करता है। जो दुःख से खिन्न हुआ, वह दूसरे की हत्या करके प्रतिकार करता है, वह उसके निमित्त से और अधिक दुःख पाता है।

पउमावती लंभक में हरिवंश कुल की उत्पत्ति का कथानक है। देवकी लंभक में कंस के पूर्वभव का विवेचन है।

अस्तु, भाव भाषा की दृष्टि से यह एक अति उत्तम कृति है जो जैन धर्म की साहित्य गरिमा को उजागर करती है।

(२) *चउप्पन्नमहापुरिसचरियं*[२]

आचार्य शीलांक द्वारा रचित यह एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें ६३ शलाकापुरुषों में से ९ प्रतिवासुदेवों को छोड़कर ५४ महापुरुषों के जीवनचरित वर्णित हुए हैं। ९ वासुदेवों के वर्णन के अन्तर्गत ही प्रतिवासुदेवों को भी सम्मिलित कर लिया गया है। इसका रचनाकाल सन् ८६८ बताया जाता है। इनके ४९-५०-५१वें अध्याय में अरिष्टनेमि श्रीकृष्ण वासुदेव के चरित वर्णित

---

१. वसुदेव हिण्डी—मेघरथ आख्यान—वही।

२. प्राकृत-ग्रन्थ-परिषद वाराणसी ई० सन् १९६१

हुए हैं। ग्रन्थ की भाषा साहित्यिक प्राकृत है। यहाँ यह ध्यान में रखने योग्य है कि जैन साहित्य में महापुरुषों की मान्यता के स्वरूप को लेकर दो विचार धाराएँ प्रचलित रही हैं। प्रथम विचार-धारा में प्रतिवासुदेवों की वासुदेवों के साथ गणना करके ५४ शलाका पुरुष मानती हैं और दूसरी विचारधारा प्रति-वासु वों की गणना स्वतन्त्र रूप से करके ६३ शलाकापुरुषों को मान्यता प्रदान करती है। प्रस्तुत कृति में ५४ शलाकापुरुषों के जीवन-सूत्र ग्रथित किए गए हैं। रचनाकार शीलांक आचार्य निबृत्तिकुलीन मानदेवसूरि के शिष्य थे। इनके दूसरे नाम जैसे शीलाचार्य और विमलमति भी उपलब्ध होते हैं।

प्रस्तुत काव्य में भगवान ऋषभदेव, भरतचक्रवर्ती, शांतिनाथ, मल्लिस्वामी और पार्श्वनाथ के चरित पर्याप्त विस्तारपूर्वक वर्णित किए गए हैं। प्रस्तुत चरित काव्य की विशेषताओं को इस प्रकार देखा जा सकता है—

(१) इसमें सूर्योदय, वसन्त, वन, सरोवर, नगर, राजसभा, युद्ध, विवाह विरह, समुद्रतल, आदि के सुन्दर काव्यात्मक वर्णन मिलते हैं।

(२) महाकाव्य की गरिमामयी शैली में वस्तुवर्णन है।

(३) सांसारिक संघर्ष के बीच, जीवन के उन परमतत्वों का विवेचन किया गया है जिनके कारण जन्म-मरण, शुभाशुभ कर्मों का आवागमन बना रहता है।

(४) पात्रों का चरित्र चित्रण सुन्दर है।

(५) प्रसंगवश इसमें विबुधानन्द नामक एकांकी नाटक भी निबद्ध है।

(६) चरित में उदात्त तत्व उपलब्ध है। परिसंवादों में अनेक नैतिक तथ्यों का समावेश हुआ है। उदाहरणार्थ एक संवाद द्रष्टव्य है—

धन सार्थवाह के एक प्रधान कर्मचारी से एक वणिक के ईर्ष्यावश पूछने पर कि सार्थवाह के पास कितना धन है? उसमें कौन-कौन से गुण हैं? वह क्या दे सकता है? इन प्रश्नों के उत्तर में मणिभद्र सार्थवाह के सम्बन्ध में उत्तर देता हुआ कहता है कि मेरे सेठ के पास एक वस्तु है—विवेक भाव। और, जो नहीं है वह वस्तु है—अनाचार। दो वस्तुएँ—परोपकारिता तथा धर्म की अभिलाषा तो है, पर अहंकार व कुसंगति नहीं है। उनमें कुलशील एवं रूप तो है पर दूसरे को नीचा दिखाना, औद्धत्य और परदारागमन ये दोष नहीं है यथा—

भणिओ य तेण मणिभद्दो जहां अहो मुद्ध मुह ! किं तुम्ह सत्थवाहस्स अत्थजायमत्थि ? केरिसा वा गुणा ? किं पभूयं वित्ते, किंवा दाऊँ समत्थोत्ति इह अम्ह सामियस्स एकं चेव अत्थि विवेइत्तं, एवकं च णत्थि अणायारो।…१

अस्तु, भाव-भाषा व काव्य का विविध विधाओं से युक्त आचार्य शीलांक की यह एक महत्त्वपूर्ण कृति जैन साहित्य भण्डार को गौरव प्रदान करती है। इसका गुजराती अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है।

(३) चउप्पन्नमहापुरिसयचरि—आम्रकवि

प्राकृत भाषा में निबद्ध इस ग्रन्थ के १०३ अधिकारों में चौवन महापुरुषों के चरित्र वर्णित हैं। इसका मुख्य छन्द गाथा है। श्लोक परिमाण १००५० है जिसमें ८७३५ गाथाएँ और १०० इतरवृत्त हैं। ग्रन्थ के आदि अन्त में अम्म शब्द के अलावा कवि ने अपनी कोई विशेष जानकारी नहीं दी है। ग्रन्थ समाप्ति के उपसंहार में बतलाया गया है कि ९ प्रतिवासुदेवों को जोड़ देने से तिरसठ शलाका पुरुष बनते हैं।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि वि० सं० ११९० में रचित आख्यान मणिकोश' वृत्तिकार आम्रदेव और प्रस्तुत कृति के रचयिता एक ही हैं।

१. सेठ देवचन्द लालभाई, बम्बई-सन १९६८, अनु० आचार्य हेमसागरसूरि।

सौजन्य से :

BOYD SMITHS PVT. LTD.

B-3/5, GILLANDAR HOUSE

8, Netaji Subhas Road,

Calcutta-700 001

Phone Office : 220-8105/2139

Resi. : 244-0629/0319

प्राकृत जैन कथा साहित्य

१. कथाओं का महत्व

डा० जगदीशचन्द्र जैन

जीवन में कथा-कहानी का महत्व

प्राचीन काल से ही कथा-साहित्य का जीवन में बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। जब मानव ने लेखन कला नहीं सीखी थी, तभी से यह कथा-कहानियों द्वारा अपने साथियों का मनोरंजन एवं ज्ञानवर्धन करता आया है। दादी और नानी अपने पोते-पोतियों और नाती-नतनियों को रात्रि में सोते समय कुतूहल-वर्धक कहानियाँ सुनाकर उनका मनोरंजन करती। इन कहानियों की रोचकता का इस बात से अनुमान लगाया जा सकता है कि बालक दिन में भी कहानी सुनने के लिए मचलते रहते। उस समय उनकी नानी यह कहकर उन्हें चुप करती कि दिन में कहानी सुनने से मामा रास्ता भूल जायेगा। भला कोई बालक चाहेगा कि उसका मामा मार्गभ्रष्ट हो जाये ?

मनोरंजन की प्रधानता

प्राचीन काल में ऐसे अनेक पेशेवर लोग थे जो विविध खेल-तमाशों द्वारा सर्व साधारण का मनोरंजन किया करते थे। नट, नर्तक, रस्सी पर खेल दिखाने वाले, बाजीगर, मल्ल, मुष्ठि युद्ध करने वाले, विदूषक, भांड़, कथक[१] (कथावाचक), रासगायक, मागध (स्तुतिपाठक), ज्योतिषी वीणावादक आदि ऐसे कितने ही लोग बड़े-बड़े नगरों के चैत्यों और देवायतनों के समीप अड्डा जमाये रहते थे। कथकों का काम था कि जब राजा दिनभर के काम से निबटकर रात्रि के समय अपने शयनीय पर आरूढ़ हो तो वे राजा के हाथ-पैर का संवाहन करते हुए उसे कहानियाँ सुनायें, और कहानी सुनता-सुनता वह आराम से निद्रा देवी की गोद में विश्राम करने लगे।

राजाओं की रानियाँ भी राजा को कहानियाँ सुनाकर आकृष्ट किया करती थी।

---

१. निशीथसूत्र (१३.५७) में साधु के लिए काथिक की प्रशंसा करने का निषेध है। वह आहार आदि, यश तथा अपनी पूजा-प्रतिष्ठा के निमित्त धर्मकथा कहता था (१३-४३५३)। औपपातिक सूत्र में विदूषक, रासगायक और मागध आदि के साथ कथक का उल्लेख है। कथासरित्सागर (२.२.२) भी देखिए।

किसी राजा ने चित्रकार की कन्या कनकमंजरी से विवाह कर लिया। उसके अन्तपुर में और भी अनेक रानियाँ थी। राजा को कहानी सुनने का शौक था।१ अतएव जो रानी कहानी कहने में कुशल होती, उसी के पास वह अपनी रात्रि व्यतीत करता। कनकमंजरी ने सोचा कि इस तरह तो बहुत दिनों बाद उसकी बारी आयेगी।

एक दिन राजा कनकमंजरी के पास आया तो उसने अपनी दासी को सिखा दिया कि वह उससे कहानी सुनाने का अनुरोध करे। कनकमंजरी ने कहानी सुनाना आरम्भ किया।

कहानी सुनाते-सुनाते जब काफी रात बीत जाती और कहानी चरम सीमा पर पहुँचती तो रानी नींद का बहाना बना, अगली रात को कहानी पूरी करने के लिए कहती। इस प्रकार कनकमंजरी राजा को छह महीने तक कहानियाँ सुना—सुनाकर उसे अपने ही पास रक्खे रही।२

कौतूहल की लीलावाई कहा मैं प्रासाद की अट्टालिका पर सुख से बैठी हुई कवि की पत्नी, रात्रि के समय, ज्योत्स्ना से पूरित अन्तःपुर की गृहदीर्घिका में गंधोत्कट कुमुदों के रसपान की लोलुपता से गुंजार करते हुए भ्रमरों का शब्द सुन, अपने प्रियतम से कोई सुन्दर कथा कहने का अनुरोध करती है।३

कथा-कहानियों के साथ शुक-सारिका के नाम भी प्राचीन काल से जुड़े चले आते हैं।४

---

१. रमणीय नगर का कथाप्रिय राजा प्रतिदिन पुरवासियों को कथा कहने के लिये बुलाया करता था। हेमचन्द्र, परिशिष्ट पर्व (३.१८-१८६)
२. आवश्यकचूर्णी २, पृ० ५७-६०
३. कौतूहल, लीलावई, २४
४. शुकसप्तति में शुक द्वारा कथित ७० कहानियों का संग्रह है। हरिदत्त सेठ का मदन-विनोद पुत्र कुमार्गगामी था और वह पिता की सीख नहीं मानता था। अपने मित्र को दुखी देख त्रिविक्रम नामक ब्राह्मण, नीतिशास्त्र में निपुण शुक और सारिका लेकर उसके पास पहुँचा और सपत्नीक शुक को पुत्र की भाँति पालने को कहा। शुक के उपदेश से उसका पुत्र अपने पिता का आज्ञाकारी बन गया। तत्पश्चात् वह धनार्जन के लिए देशांतर को रवाना हुआ। उसकी अनुपस्थिति में उसकी पत्नी प्रभावती परपुरुष की अभिलाषवती हुई। ज्योंही वह पर पुरुष के साथ रमण करने चली, सारिका ने उसे रोक दिया। प्रभावती ने उसका गला मरोड़कर उसे मार देना चाहा, लेकिन वह न मरी। शुक सारिका से अधिक चतुर था। उसने प्रभावती को ७० कहानियाँ सुनाकर उसके शील की रक्षा की। कादम्बरी में कहानी कहने वाला शुक है। तथा देखिये जातक (नं० १९८)।

पंचाख्यानवार्तिक (जे हर्टल, लाइप्जिग, १९२२) में २६वीं कथा में काश्मीर के नवहँस राजाकी कथा आती है। उसने शुक को देशविदेश में भ्रमण करने भेजा। भ्रमण करता हुआ वह स्त्रीराज्य में पहुँचा। रानी ने उसे चार समस्यायें दी और साथ में एक पत्र। मंत्रियों को एकत्र किया गया। अन्त में भारुंड शावक को उसके पिता ने समस्या का अर्थ बताया कि पोतनपुर में तिलकमंजरी नाम की वणिक पुत्री राजा से प्रेम करती है।

शकुन-शकुनी संवाद

किसी शकुन और शकुनी ने जमदग्नि की दाढ़ी में घोसला बना लिया।

एक बार शकुन अपनी शकुनी से कहने लगा—भद्रे ! तुम यही रहना, मैं हिमालय पर्वत पर अपने माता-पिता से मिलकर जल्दी ही आ जाऊँगा।

शकुनी—प्राणनाथ ! आप न जायें। आपको अकेले समझकर कहीं कोई तकलीफ न देने लगे !

शकुन—तू डर मत ! यदि कोई मेरा पराभव करेगा तो मैं उसका प्रतिकार करने में समर्थ हूँ।

शकुनी—क्या भरोसा ? कहीं आप मुझे भूलकर किसी दूसरी शकुनी से प्रेम न करने लगें ! इससे मुझे कितना कष्ट होगा !

शकुन—तुझे मैं अपने प्राणों से भी अधिक चाहता हूँ, तेरे बिना मैं थोड़े समय के लिए भी अन्यत्र नहीं रह सकता।

शकुनी—विश्वास नहीं होता कि आप लौटकर आ जायेंगे !

शकुन—तू जिसकी कहे, उसकी शपथ खाने को तैयार हूँ !

शकुनी—यदि ऐसी बात है तो शपथ खाइए कि यदि आप वापिस न आयें तो इस ऋषि को जो पाप लगा है, वह आपको लगे।

क्रमशः

स्व० नरेन्द्र सिंह जी बैद
की पुण्य स्मृति में

—मीरा बैद
८३-बी, विवेकानन्द रोड,
कलकत्ता-७००००६
फोन : २४१-०७१९

संकलन

दूध के लालच में पशुओं के साथ बर्बरता

ऑक्सीटॉसिन ऐसा इंजेक्शन है, जिसका प्रयोग अनुमन महिलाओं की प्रसवावस्था के दौरान होता है। जिन महिलाओं को असहनीय प्रसव पीड़ा होती है या काफी देर तक पीड़ा होती है, उन्हें यह इन्जेक्शन दिया जाता है। शरीर में पहुँचते ही यह गर्भाशय की संकुचन क्रिया को तेज कर देती है। फलस्वरूप शीघ्र ही प्रसव हो जाता है। इसका प्रयोग स्तन ग्रंथियों को सक्रिय करने के लिए भी किया जाता है। जिन महिलाओं को बीमारी के कारण दूध नहीं उतरता, उन्हें भी यह इंजेक्शन दिया जाता है।

गाय और भैंस को मारापीटा जाए या परेशान किया जाए, तो वे दूध नहीं देती। लेकिन दुर्भाग्य से अपने यहाँ अधिकांश डेयरियों में इन जानवरों के साथ ऐसा ही व्यवहार होता है। ज्यादातर गाय-भैंसे सात मिनट तक दूध देती है। लेकिन इन डेयरियों में गाय-भैंसों पर दिन में दो बार इस इंजेक्शन का प्रयोग किया जाता है। अधिकांश दूधवालों या डेयरी बालों को गलतफहमी है कि इस इंजेक्शन से गाय ज्यादा दूध देती हैं। दरअसल, इस इंजेक्शन से दूध की मात्रा बढ़ने के बजाय दूध निकलने का प्रवाह बढ़ जाता है। ऐसा इसलिए होता है, क्योंकि यह दवा गर्भाशय की संकुचन क्रिया को तीव्र कर देती है।

क्या आपको पता है कि प्रसव पीड़ा कितनी कष्टदायी होती है? महिलाएँ तो संतान प्राप्ति की खुशी में इस पीड़ा को भुला डालती है लेकिन क्या आपने उन हजारों-लाखों गायों की पीड़ा का अन्दाजा लगाया है, जो रोज दो बार इस तकलीफ से गुजरती है? मेरे पास फिल्मों के रूप में ऐसे ठोस और अधिकृत प्रमाण हैं, जिनमें दिखाया गया है कि दूध वाले इन जानवरों को ऑक्सीटॉसिन का इंजेक्शन लगा रहे हैं। देखा कि एक आदमी जब सिरिंज लेकर भैंस की तरफ बढ़ा, तो उसे देखते ही भैंस भय से बुरी तरह रंभाने और चिल्लाने लगी और देखते ही उसने बिल्कुल अनाड़ी अन्दाज में भैंस के पिछले हिस्से में इंजेक्शन घोंप दिया।

दूध निकलने के इस कृत्रिम तरीके का नुकसान यह होता है कि गायों की दुग्ध स्राव शक्ति तथा प्रजनन शक्ति कम होने लगती है और वे समय से पहले बांझ हो जाती हैं। इसी का नतोजा है कि कुछ सालों में ही वे प्रजनन बन्द कर देती हैं और फिर उन्हें कसाईखानें पहुंचा दिया जाता है या सड़क पर आवारा छोड़ दिया जाता है।

ऑक्सीटॉसिन एक ऐसा हारमोन है, जो पश्च-पीयुष ग्रन्थि से स्रावित होता है। हारमोन के इंजेक्शनों की तरह किसी भी आम आदमी द्वारा इंजेक्शन का प्रयोग प्रतिषन्धित है, केवल रजिस्टर्ड स्त्री रोग विशेषज्ञ ही इसका इस्तेमाल कर सकते हैं।

इ[illegible] सिर्फ धड़ल्ले से कैमिस्टों के यहां मिल रही है, बल्कि गांवों में किराने की दुकानों और पनवाड़ियों तक के यहां खुलेआम बिक रही है मेरी फिल्म के एक दृश्य में दिखाया गया है कि एक डेयरी में बिना लेबल के इसे बेचा जा रहा है और तो और इसकी पैकिंग तक ठीक से नहीं हुई है। जाहिर है कि ऑक्सीटॉसिन के निर्माताओं को बेइन्तहा मुनाफा हो रहा है। इतना ही नहीं इन्जेक्शन की ओवरडोज (गलती से) पसलियों में इंजेक्शन लगने से या संक्रमित सुइयों के कारण हुई टिटनेस की तकलीफों से न जाने कितनी निरीह गाय भैंस रोज़ दम तोड़ देती हैं।

ऑक्सीटॉसिन का असर सिर्फ गाय तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि उसके दूध और चर्बी में पहुंचता रहता है। ऑक्सीटॉसीन आंखों के लिये विशेष-कर बच्चों के लिए काफी नुकसानदेह होता है। इस दवा के व्यापक प्रयोग का नतीजा यह है कि पूरे देश में गाय की चर्बी में टॉक्सिक तत्वों की उपस्थिति बड़ी मात्रा में देखी गई है। कभी आपने सोचा है कि ऑक्सीटॉसिन की इस अतिरिक्त मात्रा का आपके शरीर पर क्या प्रभाव पड़ता है। निस्संदेह यह हारमोन महिलाओं और बालिकाओं की प्रजनन शक्ति को प्रभावित करता है। ऐसे में हारमोन के असन्तुलन से बालिकाओं में जल्दी स्तन विकसित होना, समय से पूर्व मासिक धर्म का शुरू होना या अनियमित होना, चेहरे पर बाल आना तथा आंखे कमजोर होना जैसे लक्षण दिखाई देने लगते हैं।

जानवरों पर ऑक्सीटॉसिन का प्रयोग भारत सहित दुनिया के सभी देशों में प्रतिबन्धित है। लेकिन प्रतिबन्ध के लागू करने वाला नियम इतना ढीला-ढाला है कि आज हर डेयरी में इसका खुले आम प्रयोग हो रहा है। यहाँ तक कि अनपढ़ दूधवाला भी ऑक्सीटॉसिन को वैसे ही जानता है जैसे यूरिया को।

क्या आप जानते हैं दूध कहां से व किस शक्ल में आता हैं ?

गाय सिर्फ दुग्ध पम्प नहीं है, जिससे न्यूनतम मूल्य में अधिकतम दूध वसूला जा सके—इसके आगे भी उसका अस्तित्व है। दूध एक अनावश्यक चौरकर्म है।

"ऑक्सीटॉसिन इंजेक्शन" के कारण बछड़ों के अधिकार का हनन हुआ यही कारण है कि अकेले बम्बई के तबेले में प्रतिवर्ष ८० हजार बछड़े जबरन भुखमरी के शिकार हो जाते हैं।

डेयरियाँ दूध को फटने से बचाने के लिए उसमें डी० डी० टी० / एस० सी० एच० आईसोमर्स तथा अन्य कीटनाशी दवाइयाँ मिला देती हैं।

ऑक्सीटॉसिन की इस अतिरिक्त मात्रा का परिणाम है।—

समय से पूर्व यौन ग्रन्थियाँ विकसित होना और यही कारण है कि दुराचार की, बलात्कार की घटनायें प्रतिदिन बढ़ रही हैं। समय से पूर्व यौन ग्रंथियां विकसित होने से उम्र का औसत गिर जाता है।

इसलिये दूध के प्रयोग में विवेक-अहिंसक बुद्धि जोड़ो क्योंकि वैसे भी सबल के द्वारा निर्बल से छीनकर लेने या उसके प्रयोग को करने में हमारी अहिंसा इजाजत नहीं देती।

साभार : श्रमणोपासक

—श्रीमती मेनका गांधी

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञानमंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
जि. गांधीनगर, पिन-382009

WB/NC-330
Vol. XX No. 7 **TITTHAYARA** **November 1996**
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77